१ओंकार सतिगुर प्रसादि ॥

विश्व का अनोखा युद्ध एवम् अल्प आयु के शहीद

सूरा सो पहचानिये, जो लरै दीन के हेतु ॥
पुरजा पुरजा कटि मरै, कबहु न छाडै खेतु ॥
(सलोक कबीर जी)

शहीद की परिभाषा

जो मनुष्य लगातार चुनौती देने पर भी अपने सच्च के आदर्श पर दृढ़ता से डटा हुआ अपने प्राणों की आहुति दे दे अथवा बलिदान हो जाए किन्तु अपनी धारणा में परिवर्तन न लाए, ऐसे बलिदानी पुरुष को शहीद कहते हैं। दूसरे शब्दों में जिस मनुष्य को अपने प्राण सुरक्षित रखने के लिए शत्रुओं द्वारा अनेक लालच तथा अवसर प्रदान किया जाए फिर भी वह अपने आदर्शवादी मार्ग को त्याग देने की बजाये इस क्षण भंगुर शरीर को त्याग दे, वह शहीद कहलाता है। रणक्षेत्र में युद्धरत सैनिकों पर भी यही सिद्धांत लागू होता है। उन को भी विरोधी पक्ष के सैनिक शस्त्र – अस्त्र डाल देने के लिए विवश करते हैं। अथवा भागने का पूरा अवसर प्रदान करते हैं। किन्तु देश भक्त सैनिक ऐसा न कर, देश के काम आने को ही अपना लक्ष्य मानते हैं। अर्थात् विजय अथवा मृत्यु में से किसी एक की प्राप्ति की कामना ही उनको शहीद का दर्जा देती है।

प्रकाशक
क्रांतिकारी जगत् गुरू नानक देव चैरिटेबल ट्रस्ट, चण्डीगढ़

लेखक : स. जसबीर सिंघ Ph. : (0172-2696891), 09988160484

Download Free

पृष्ठभूमि

यह वीर गाथा उन सुकुमारों की है ; जिन्हों ने किशोर अवस्था में ही शहादत का जाम पी लिया। उन के पिता श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी तत्कालीन सम्राट औंरगज़ेब से लम्बे समय से लोहा ले रहे थे । सम्राट ने लम्बे युद्ध से परेशान होकर, विवशता में श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी को एक विशेष संधि का मुसौदा भेजा। जिस में उसने स्वयं पवित्र कुरान की शपथ लेकर गुरू साहिब से आग्रह किया कि वह संधि पत्र की इबारत की विशेष धाराओं के अनुरूप देश के किसी भी क्षेत्र में बिना भय के विचरण कर सकते हैं ; उन के जान – माल की सलामती (सुरक्षा) की जमानत दी जायेगी। ब – शर्ते कि वह एक बार हमारी आन – बान बनाये रखने के लिए आनंदपुर का किला खाली कर दें। इस बीच हमारा सैन्य बल आपको सकुशल कहीं भी जाने देंगा और किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचाएंगा।

गुरू साहिब को औरंगज़ेब की कुरान की कसमों पर बिलकुल भी भरोसा न था। वह जानते थे कि राजनीतिज्ञ छल – कपटी होते हैं। अतः वह बहुत सतर्क थे। किन्तु किले में रसद के अभाव से तंग होकर सिख सैनिकों की ओर से भी गुरू साहिब पर भारी दबाव बना हुआ था कि वह समय का लाभ उठाकर किले को त्याग दें। इस प्रकार संधि के अनुछेद दो के अनुसार गुरू साहिब को किला त्यागने पर प्रशासन की ओर से सुरक्षा प्रदान की जानी थी। जिस पर सम्राट के अतिरिक्त वरिष्ठ सैनिक अधिकारीयों के हस्ताक्षर भी थे।

गुरू साहिब ने सावधानी से कार्य करते हुए शीत ऋतु की सब से बड़ी रात्रि के मध्य 20 दिसम्बर,1704 सन् को आनंदपुर का किला अकस्मात त्याग दिया। उस समय घनघोर वर्षा हो रही थी और सर्दी पूरे यौवन पर थी।

किशोर अवस्था के शहीद

आनन्दगढ़ का त्याग

सन् 1704 ईस्वी 20 दिसम्बर की मध्य रात्रि का समय, पँजाब में शीत ऋतु यौवन पर थी। बाहर हड्डियाँ जमा देने वाली सर्दी क्योंकि दो दिन से घनघोर वर्षा हो रही थी और अभी भी बूँदाबाँदी हो रही थी। आनन्दपुर में सन्नाटा था। कोसों तक फैले मुगलों के शिविरों में मौन व्याप्त था। सँसार सो रहा था किन्तु आनन्दगढ़ किले के अन्दर कुछ हलचल थी।

कोई अपना माल – धन लुटा रहा था, अमूल्य वस्तुओं को अग्नि भेंट करके अथवा भूमि में गाढ़ कर। गुरू गोबिन्द सिंह की आनन्दपुर के किले में यह अन्तिम रात्रि थी। कल प्रात: न जाने वह कहाँ होंगे और उनके बच्चे कहाँ?

आनन्दपुर छोड़ने से पहले वह बिल्कुल खाली होकर, हल्का होकर जाना चाहते थे। सभी कुछ स्वाहा करके। जो अग्नि सम्भाल न सके, उसे धरती के सुपुर्द करके, जिससे शत्रु के नापाक हाथ इन चीज़ों को छू न सकें, इसकी दुर्गति न हो।

आधी रात बीतने को आई। तारों के हल्के हल्के प्रकाश में कुकुरमुत्ता की भान्ति सीधी और लम्बा, ऊँचा, घुटनों को छूने वाली लम्बी सुडौल बाहों वाला, छाती तनी हुई एक ईश्वरीय चेहरा किले से बाहर निकला। मर्द अगंमड़ा गुरू गोबिन्द सिंह आनन्दपुर छोड़ कर जा रहा था।

यह लोग आनन्दपुर से कहाँ जा रहे थे। यह तो शायद उन्हें भी पता न था। जा रहे थे अकाल पुरूष के भरोसे। स्वाभिमान के बदले ताज, तख्त ठुकराने वाले व्यक्तियों का वह काफ़िला बिना मंजिल का पता लगाये निकल पड़ा। इनका हर कदम मंजिल था।

आनन्दपुर से प्रस्थान

अभी गुरू साहिब सरसा नदी के इस पार ही थे कि भोर हो गई। इसी अमृतकाल में हर रोज आनन्दगढ़ में 'आसा की वार' का दीवान सजा करता था। गुरू साहिब और सिक्ख भक्ति में जुड़ जाया करते थे और कीर्तन का रस लेते। इस समय प्रभु से ध्यान लगाने की आदत पक्की होने के कारण सिक्खों को कुछ खोया – खोया सा अनुभव हुआ। कई सालों में आज पहली बार वे 'आसा की वार' का समय टालने पर मजबूर हुए थे। गजों की दूरी पर बैठी दुश्मन की फौजों से बचकर वे चुपचाप जा रहे थे। कीर्तन करना दुश्मन को बुलाकर मुसीबत मोल लेना था। पर इस टोले का सरदार वह व्यक्ति था जिसकी नज़रों में अकाल पुरूष की बन्दगी के सामने दुनिया की सब चीज़ें व्यर्थ थी। गुरू गोबिन्द सिंह भौतिक वस्तुओं, राज – रजवाड़े, धन – दौलत और अपनी जान को भी त्याग सकते थे पर प्रभु का नाम नहीं। यह गुरू नानक की आरम्भिक देन थी और सभी गुरूओं की धर्म – मर्यादा।

शत्रु के आक्रमण की कोई चिन्ता न करके गुरू साहिब ने आज्ञा दी कि नित्य की भान्ति आसा जी दी वार होगी। वह प्राण हथेली पर रख कर घूमने वाला विचित्र व्यक्तियों का जत्था सरसा नदी के किनारे भक्ति रस में डूब गया।

सरसा नदी की जल – तरंगों ने जो अनहद नाद सुना, वह कुछ इस प्रकार था –

'जलस तुहि। थलस तुहि। नादिस तुहि। नदस तुहि।

ज़मी तुहि। जमा तुहि। मकहीं तुहि। मकां तुहि।

जतस तुहि। व्रतस तुहि। गतस तुहि। पतस तुहि।

तुहि तुहि। तुहि तुहि। तुहि तुहि। तुहि तुहि।'

बरसती गोलियों की छाया के नीचे कीया गया यह कीर्तन गुरू गोबिन्द सिंह के आत्मिक झुकाव और रूहानी मूल्यों का भौतिक फर्जों पर प्रभावी होने का सच्चा और ऊँचा नमूना प्रस्तुत किया।

गाय और कुरान की कसमें उठा कर गुरू साहिब को सही सलामत आनन्दपुर से निकल जाने का भरोसा दिलाने वालों को जब पता लगा कि गुरू गोबिन्द सिंह अपने परिवार और सिक्खों सहित सिरसा नदी के किनारे पहुँच गए हैं तो वे सारे कौल, इकरार और कसमें भूल गए। एक ओर तो आनन्दपुर शहर पर हल्ला बोला और उसे बुरी तरह लूटा और दूसरी ओर सिक्खों के पीछे सेना डाल दी।

चमकौर का युद्ध

कीरतपुर से लगभग चार कोस की दूरी पर सरसा नदी है। जिस समय सिक्खों का काफिला इस बरसाती नदी के किनारे पहुँचा तो इसमें भयंकर बाढ़ आई हुई थी और पानी जोरों पर था। इस समय सिक्ख भारी कठिनाई में घिर गए। उनके पिछली तरफ शत्रु दल मारो-मार करता आ रहा था और सामने सरसा नदी फुंकारा मार रही थी, निर्णय तुरन्त लेना था। अत: श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी ने कहा - कुछ सैनिक यहीं शत्रु को युद्ध में उलझा कर रखों और जो सरसा पार करने की क्षमता रखते हैं वे अपने घोड़े सरसा के बहाव के साथ नदी पार करने का प्रयत्न करें। ऐसा ही किया गया। भाई उदय सिंह तथा जीवन सिंह अपने अपने जत्थे लेकर शत्रु के साथ भिड़ गये। इतने में गुरू साहिब जी सरसा नदी पार करने में सफल हो गए। किन्तु सैकड़ों सिंघ सरसा नदी पार करते हुए मौत का शिकार हो गए क्योंकि पानी का वेग बहुत तीखा था। कई तो पानी के बहाव में बहते हुए कई कोस दूर बह गए। पौष माह के दिन थे, जाड़े ऋतु की वर्षा, नदी का बर्फीला ठंडा पानी, इन बातों ने गुरू साहिब जी के सैनिकों के शरीरों को सुन्न कर दिया। इसी कारण शत्रु सेना ने सरसा नदी पार करने का साहस नहीं किया।

सरसा नदी पार करने के पश्चात् 40 सिक्ख दो बड़े साहिबजादे अजीत सिंह तथा जुझार सिंह के अतिरिक्त गुरू साहिब जी स्वयँ कुल मिलाकर 43 व्यक्तियों की गिनती हुई। नदी के इस पार भाई उदय सिंह तथा जीवन सिंह मुगलों के अनेकों हमलों को पछाड़ते रहे ओर वे तब तक वीरता से लड़ते रहे जब तक उनके पास एक भी जीवित सैनिक था और अन्तत: वे दोनों जत्थेदार युद्ध भूमि में गुरू आज्ञा निभाते और कर्त्तव्य पालन करते हुए वीरगति पा गये। इस भयंकर उथल-पुथल में गुरू साहिब जी का परिवार उनसे बिछुड़ गया। भाई मनी सिंह जी के जत्थे में माता साहिब कौर जी व माता सुन्दरी कौर जी दो टहल सेवा करने वाली दासियां थी। दो सिक्ख भाई जवाहर सिंह तथा धन्ना सिंह जो दिल्ली के निवासी थे, यह लोग सरसा नदी पार कर पाए, यह सब हरिद्वार से होकर दिल्ली पहुँचे। जहाँ भाई जवाहर सिंह इनको अपने घर ले गया। दूसरे जत्थे में माता गुजरी जी छोटे साहबज़ादे जोरावर सिंघ और फतेह सिंघ तथा गँगा राम ब्राह्मण थे, जो गुरू घर का रसोईया था। इसका गाँव खेहेड़ी यहां से लगभग 15 कोस की दूरी पर मौरिंडा कस्बे के निकट था। गँगा राम माता गुजरी जी व साहिबज़ादों को अपने गाँव ले गया।

गुरू साहिब जी अपने चालीस सिक्खों के साथ आगे बढ़ते हुए दोपहर तक चमकौर नामक क्षेत्र के बाहर एक बगीचे में पहुँचे। यहाँ के स्थानीय लोगों ने गुरू साहिब का हार्दिक स्वागत किया और प्रत्येक प्रकार की सहायता की। यहीं एक किलानुमा कच्ची हवेली थी जो सामरिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण थी क्योंकि इसको एक ऊँचे टीले पर बनाया गया था। जिसके चारों ओर खुला समतल मैदान था। हवेली के स्वामी बुधीचन्द ने गुरू साहिब जी से आग्रह किया कि आप इस हवेली में विश्राम करें। गुरू साहिब जी ने आगे जाना उचित नहीं समझा। अत: चालीस सिक्खों को छोटी छोटी टुकड़ियों में बाँट कर उनमें बचा खुचा असला बाँट दिया और सभी सिक्खों को मुकाबले के लिए मोर्चो पर तैनात कर दिया। अब सभी को मालूम था कि मृत्यु निश्चित है परन्तु खालसा सैन्य का सिद्धान्त था कि शत्रु के समक्ष हथियार नहीं डालने केवल वीरगति प्राप्त करनी है। अत: अपने प्राणों की आहुति देने के लिए सभी सिक्ख तत्पर हो गये। गरूदेव अपने चालीस शिष्यों की ताकत से असंख्य मुगल सेना से लड़ने की योजना बनाने लगे। गुरू साहिब जी ने स्वयं कच्ची गढ़ी (हवेली) के ऊपर अट्टालिका में मोर्चा सम्भाला। अन्य सिक्खों ने भी अपने अपने मोर्चे बनाए और मुगल सेना की राह देखने लगे।

उधर जैसे ही सरसा नदी के पानी का बहाव कम हुआ। मुग़ल सेना टिड्डी दल की तरह उसे पार करके गुरू साहिब जी का पीछा करती हुई चमकौर के मैदान में पहुँची। देखते ही देखते उसने गुरू साहिब जी की कच्ची गढ़ी को घेर लिया। मुग़ल सेनापतियों को गाँव वालों से पता चल गया था कि गुरू साहिब जी के पास केवल चालीस ही सैनिक हैं। अत: वे यहाँ गुरू साहिब जी को बन्दी बनाने के स्वप्न देखने लगे। सरहिन्द के नवाब वजीद ख़ान ने भोर होते ही मुनादी करवा दी कि यदि गुरू साहिब जी अपने आपको साथियों सहित मुग़ल प्रशासन के हवाले करें तो उनकी जान बख्शी जा सकती है। इस मुनादी के उत्तर में गुरू साहिब जी ने मुग़ल सेनाओं पर तीरों की बौछार कर दी। इस समय मुकाबला चालीस सिक्खों का हज़ारों (असंख्य) की गिनती में मुग़ल सैन्यबल के साथ था। इस पर गुरू साहिब जी ने भी तो एक-एक सिक्ख को सवा-सवा लाख के साथ लड़ाने की सौगन्ध खाई हुई थी। अब इस सौगन्ध को भी विश्व के समक्ष क्रियान्वित करके प्रदर्शन करने का शुभ अवसर आ गया था।

22 दिसम्बर सन् 1704 को सँसार का अनोखा युद्ध प्रारम्भ हो गया। आकाश में घनघोर बादल थे और धीमी धीमी बूंदाबांदी हो रही थी। वर्ष का सबसे छोटा दिन होने के कारण सूर्य भी बहुत देर से उदय हुआ था, कड़ाके की शीत लहर चल रही थी किन्तु गर्मजोशी थी तो कच्ची हवेली में आश्रय लिए बैठे गुरू साहिब जी के योद्धाओं के हृदय में।

कच्ची गढ़ी पर आक्रमण हुआ। भीतर से तीरों और गोलियों की बौछार हुई। अनेक मुग़ल सैनिक हताहत हुए। दोबारा सशक्त धावे का भी यही हाल हुआ। मुग़ल सेनापतियों को अविश्वास होने लगा था कि कोई चालीस सैनिकों की सहायता से इतना सबल भी बन सकता है।

सिक्ख सैनिक लाखों की सेना में घिरे निर्भय भाव से लड़ने-मरने का नाटक खेल रहे थे। उनके पास जब गोला बारूद और बाण समाप्त हो गए किन्तु मुग़ल सैनिकों की गढ़ी के समीप भी जाने की हिम्मत नहीं हुई तो उन्होंने तलवार

और भाले का युद्ध लड़ने के लिए मैदान में निकलना आवश्यक समझा। सर्वप्रथम भाई हिम्मत सिंघ को गुरू साहिब जी ने आदेश दिया कि वह अपने साथियों सहित पाँच का जत्था लेकर रणक्षेत्र में जाकर शत्रु से जूझे। तभी मुग़ल जरनैल नाहर ख़ान ने सीढ़ी लगाकर गढ़ी पर चढ़ने का प्रयास किया किन्तु गुरू साहिब जी ने उसको वहीं बाण से भेद कर चित्त कर दिया। एक और जरनैल ख्वाजा महमूद अली ने जब साथियों को मरते हुए देखा तो वह दीवार की ओट में भाग गया। गुरू साहिब जी ने उसकी इस बुजदिली के कारण उसे अपनी रचना में मरदूद करके लिखा है।

सरहिन्द के नवाब ने सेनाओं को एक बार इक्ट्ठे होकर कच्ची गढ़ी पर पूर्ण वेग से आक्रमण करने का आदेश दिया। किन्तु गुरू साहिब जी ऊँचे टीले की हवेली में होने के कारण सामरिक दृष्टि से अच्छी स्थिति में थे। अत: उन्होंने यह आक्रमण भी विफल कर दिया और सिंहों के बाणों की वर्षा से सैकड़ों मुग़ल सिपाहियों को सदा की नींद सुला दिया। सिक्खों के जत्थे ने गढ़ी से बाहर आकर बढ़ रही मुग़ल सेना को करारे हाथ दिखलाये। गढ़ी की ऊपर की अट्टालिका (अटारी) से गुरू साहिब जी स्वयँ अपने योद्धाओं की सहायता शत्रुओं पर बाण चलाकर कर रहे थे। घड़ी भर खूब लोहे पर लोहा बजा। सैकड़ों सैनिक मैदान में ढेर हो गए। अन्ततः पाँचों सिक्ख भी शहीद हो गये। फिर गुरू साहिब जी ने पाँच सिक्खों का दूसरा जत्था गढ़ी से बाहर रणक्षेत्र में भेजा। इस जत्थे ने भी आगे बढ़ते हुए शत्रुओं के छक्के छुड़ाए और उनको पीछे धकेल दिया और शत्रुओं का भारी जानी नुक्सान करते हुए स्वयँ भी शहीद हो गए। इस प्रकार गुरू साहिब जी ने रणनीति बनाई और पाँच पाँच के जत्थे बारी बारी रणक्षेत्र में भेजने लगे। जब पाँचवा जत्था शहीद हो गया तो दोपहर का समय हो गया था।

सरहिन्द के नवाब वज़ीद ख़ान की हिदायतों का पालन करते हुए जरनैल हदायत ख़ान, इसमाईल खान, फुलाद खान, सुलतान खान, असमाल खान, जहान खान, खलील ख़ान और भूरे ख़ान एक बारगी सेनाओं को लेकर गढ़ी की ओर बढ़े। सब को पता था कि इतना बड़ा हमला रोक पाना बहुत मुश्किल है। इसलिए अन्दर बाकी बचे सिक्खों ने गुरू साहिब जी के सम्मुख प्रार्थना की कि वह साहबजादों सहित युद्ध क्षेत्र से कहीं ओर निकल जाएं। यह सुनकर गुरू साहिब जी ने सिक्खों से कहा – 'तुम कौन से साहिबजादों (बेटों) की बात करते हो, तुम सभी मेरे ही साहबजादे हो' गुरू साहिब जी का यह उत्तर सुनकर सभी सिक्ख आश्चर्य में पड़ गये। यह सुनकर गुरू साहिब जी के बड़े सुपुत्र अजीत सिंह के भुजदण्ड फड़क उठे। वह पिता जी के पास जाकर अपनी युद्धकला के प्रदर्शन की अनुमति माँगने लगे। गुरू साहिब जी ने सहर्ष उन्हें आशीष दी और अपना कर्त्तव्य पूर्ण करने को प्रेरित किया। साहिबजादा अजीत सिंह के मन में कुछ कर गुजरने के वलवले थे, युद्धकला में निपुणता थी। बस फिर क्या था वह अपने चार अन्य सिक्खों को लेकर गढ़ी से बाहर आए और मुगलों की सेना पर ऐसे टूट पड़े जैसे शार्दूल मृग – शावकों पर टूटता है। अजीत सिंह जिधर बढ़ जाते, उधर सामने पड़ने वाले सैनिक गिरते, कटते या भाग जाते थे। पाँच सिंघों के जत्थे ने सैंकड़ों मुगलों को काल का ग्रास बना दिया।

अजीत सिंघ ने अविस्मरणीय वीरता का प्रदर्शन किया, किन्तु एक एक ने यदि पचास पचास भी मारे हों तो सैनिकों के सागर में से चिड़िया की चोंच भर नीर ले जाने से क्या कमी आ सकती थी। साहिबजादा अजीत सिंह को छोटे

भाई साहिबज़ादा जुझार सिंघ ने जब शहीद होते देखा तो उसने भी गुरू साहिब जी से रणक्षेत्र में जाने की आज्ञा मांगी। गुरू साहिब जी ने उसकी पीठ थपथपाई और अपने किशोर पुत्र को रणक्षेत्र में चार अन्य सेवकों के साथ भेजा। गुरू साहिब जी जुझार सिंघ को रणक्षेत्र में जूझते हुए, देखकर प्रसन्न होने लगे और उसके युद्ध के कौशल देखकर जयकार के ऊँचे स्वर में नारे बुलन्द करने लगे - जो बोले, सो निहाल, सत् श्री अकाल। जुझार सिंघ शत्रु सेना के बीच घिर गये किन्तु उन्होंने वीरता के जौहर दिखलाते हुए वीरगति पाई। इन दोनों योद्धाओं की आयु क्रमश 18 वर्ष तथा 14 वर्ष की थी। वर्षा अथवा बादलों के कारण सांझ हो गई, वर्ष का सबसे छोटा दिन था, कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी, अंधेरा होते ही युद्ध रूक गया।

गुरू साहिब ने दोनों साहिबजादों को शहीद होते देखकर अकाल-पुरूष के समक्ष धन्यवाद (शुकराने) की प्रार्थना की और कहा - 'तेरा तुझ को सौंपते, क्या लागे मेरा'। शत्रु अपने घायल अथवा मृत सैनिकों के शवों को उठाने के चक्रव्यूह में फँस गया, चारों ओर अंधेरा छा गया। इस समय गुरू साहिब जी के पास सात सिक्ख सैनिक बच रहे थे और वह स्वयँ कुल मिलाकर आठ की गिनती पूरी होती थी। मुग़ल सेनाएं पीछे हटकर आराम करने लगी। उन्हें अभी सन्देह बना हुआ था कि गढ़ी के भीतर पर्याप्त संख्या में सैनिक मौजूद हैं।

रहिरास के पाठ का समय हो गया था अत: सभी सिक्खों ने गुरू साहिब जी के साथ मिलकर पाठ किया तत्पश्चात् गुरू साहिब जी ने सिक्खों के चढ़दीकला में रहकर जूझते हुए शहीद होने के लिए प्रोत्साहित किया। सभी ने शीश झुका कर आदेश का पालन करते हुए प्राणों की आहुति देने की शपथ ली किन्तु उन्होंने गुरू साहिब जी के चरणों में प्रार्थना की कि यदि आप समय की नज़ाकत को मद्देनज़र रखते हुए यह कच्ची गढ़ीनुमा हवेली त्याग कर आप कहीं और चले जाएं तो हम बाजी जीत सकते हैं क्योंकि हम मर गए तो कुछ नहीं बिगड़ेगा परन्तु आपकी शहीदी के बाद पंथ का क्या होगा ?इस प्रकार तो श्री गुरू नानक देव जी का लक्ष्य सम्पूर्ण नहीं हो पायेगा। यदि आप जीवित रहे तो हमारे जैसे हज़ारों-लाखों की गिनती में सिक्ख आपकी शरण में एकत्र होकर फिर से आपके नेतृत्त्व में संघर्ष प्रारम्भ कर देंगे। गुरू साहिब जी तो दूसरों को उपदेश देते थे - जब आव की आउध निदान बनै, अति ही रण में तब जूझ मरौ। फिर भला युद्ध से वह स्वयँ कैसे मुँह मोड़ सकते थे ? गुरू साहिब जी ने सिंहों को उत्तर दिया - मेरा जीवन मेरे प्यारे सिक्खों के जीवन से मूल्यवान नहीं, यह कैसे सम्भव हो सकता है कि मैं तुम्हें रणभूमि में छोड़कर अकेला निकल जाऊँ। मैं रणक्षेत्र को पीठ नहीं दिखा सकता, अब तो वह स्वयँ दिन चढ़ते ही सब से पहले अपना जत्था लेकर युद्धभूमि में उतरेंगे। गुरू साहिब जी के इस निर्णय से सिक्ख बहुत चिन्तित हुए। वे चाहते थे कि गुरू साहिब जी किसी भी विधि से यहाँ से बचकर निकल जाएं ताकि लोगों को भारी संख्या में सिंह सजा कर पुन: संगठित होकर, मुगलों के साथ दो दो हाथ करें।

सिक्ख भी यह मन बनाए बैठे थे कि सतगुरू जी को किसी भी दशा में शहीद नहीं होने देना। वे जानते थे कि गुरू साहिब जी द्वारा दी गई शहादत इस समय पंथ के लिए बहुत हानिकारक सिद्ध होगी। अत: भाई दया सिंह जी ने एक युक्ति सोची और अपना अन्तिम हथियार आजमाया। उन्होंने इस युक्ति के अन्तर्गत सभी सिंहों को विश्वास में लिया

और उनको साथ लेकर पुन: गुरू साहिब जी के पास आये। कहने लगे – 'गोबिन्द सिंह जी, अब गुरू खालसा (पाँच प्यारे) परमेश्वर रूप होकर, आपको आदेश देते हैं कि यह कच्ची गढ़ी आप तुरन्त त्याग दें और कहीं सुरक्षित स्थान पर चले जाएं क्योंकि इसी नीति में पंथ खालसे का भला है। गुरू साहिब जी ने पाँच प्यारों का आदेश सुनते ही शीश झुका दिया और कहा –मैं अब कोई प्रतिरोध नहीं कर सकता क्योंकि मुझे अपने गुरू की आज्ञा का पालन करना ही है।

गुरू साहिब जी ने कच्ची गढ़ी त्यागने की योजना बनाई। दो जवानों को साथ चलने को कहा। शेष पाँचों को अलग अलग मोर्चो पर नियुक्त कर दिया। संगत सिंघ जिस का डील–डौल (कद–बुत) तथा रूपरेखा गुरू साहिब जी के साथ मिलती थी, उसे अपनी दसतार अथवा कलगी सजा कर अपने स्थान अट्टालिका पर बैठा दिया कि शत्रु भ्रम में पड़ा रहे कि गुरू गोबिन्द सिंह स्वयँ हवेली में हैं, किन्तु उन्होंने निर्णय लिया कि यहाँ से प्रस्थान करते समय हम शत्रुओं को ललकारेगें क्योंकि चुपचाप (शान्त) निकल जाना कायरता और कमजोरी का चिन्ह माना जाएगा और उन्होंने ऐसा ही किया।

देर रात गुरू साहिब जी अपने दोनों साथियों दया सिंह तथा मानसिंह सहित गढ़ी से बाहर निकले, निकलने से पहले उनको समझा दिया कि हमे मालवा क्षेत्र की ओर जाना है और कुछ विशेष तारों की सीध में चलना है। जिससे बिछुड़ने पर फिर से मिल सकें। इस समय बूंदाबांदी थम चुकी थी और आकाश में कहीं कहीं बादल छाये थे किन्तु बिजली बार बार चमक रही थी। कुछ दूरी पर अभी पहुँचे ही थे कि बिजली बहुत तेजी से चमकी। दयासिंघ की दृष्टि रास्ते में बिखरे शवों पर पड़ी तो साहिबज़ादा अजीत सिंह का शव दिखाई दिया, उसने गुरू साहिब जी से अनुरोध किया कि यदि आप आज्ञा दें तो मैं अजीत सिंह के पार्थिव शरीर पर अपनी चादर डाल दूं। उस समय गुरू साहिब जी ने दया सिंह से प्रश्न किया आप ऐसा क्यों करना चाहते हैं। दयासिंघ ने उत्तर दिया कि गुरू साहिब, आप के लाड़ले बेटे अजीत सिंह का शव है। गुरू साहिब जी ने फिर पूछा क्या वे मेरे पुत्र नहीं जिन्होंने मेरे एक संकेत पर अपने प्राणों की आहुति दी है? दया सिंह को इस का उत्तर हाँ में देना पड़ा। इस पर गुरू साहिब जी ने कहा यदि तुम सभी सिंहों के शवों पर एक एक चादर डाल सकते हो, तो ठीक है, इसके शव पर भी डाल दो। भाई दया सिंह जी गुरू साहिब जी के त्याग और बलिदान को समझ गये और तुरन्त आगे बढ़ गये। योजना अनुसार गुरू साहिब जी और सिक्ख अलग–अलग दिशा में कुछ दूरी पर चले गये और वहाँ से ऊँचे स्वर में आवाजें लगाई गई, पीर–ऐ–हिन्द जा रहा है किसी की हिम्मत है तो पकड़ ले और साथ ही मशालचियों को तीर मारे जिससे उनकी मशालें नीचे कीचड़ में गिर कर बुझ गई और अंधेरा घना हो गया। पुरस्कार की लालच में शत्रु सेना आवाज की सीध में भागी और आपस में भिड़ गई। समय का लाभ उठाकर गुरू साहिब जी और दोनों सिंघ अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने लगे और यह नीति पूर्णत: सफल रही। इस प्रकार शत्रु सेना आपस में टकरा–टकरा कर कट मरी।

अगली सुबह प्रकाश होने पर शत्रु सेना को भारी निराशा हुई क्योंकि हजारों (असंख्य) शवों में केवल पैंतीस शव सिक्खों के थे। उसमें भी उनको गुरू गोबिन्द सिंघ कहीं दिखवाई नहीं दिये। क्रोधातुर होकर शत्रु सेना ने गढ़ी पर पुन: आक्रमण कर दिया। असंख्य शत्रु सैनिकों के साथ जूझते हुए अन्दर के पाँचों सिक्ख वीरगति पा गए।

भाई संगत सिंह जी भी शहीद हो गये जिन्होंने शत्रु को झांसा देने के लिए गुरू साहिब जी की वेश-भूषा धारण की हुई थी। भाई संगत सिंह के शव को देखकर मुग़ल सेनापति बहुत प्रसन्न हुए कि अन्त में गुरू मार ही लिया गया। परन्तु जल्दी ही उनको मालूम हो गया कि यह शव किसी अन्य व्यक्ति का है और गुरू तो सुरक्षित निकल गए हैं। मुग़ल सत्ताधारियों को यह एक करारी चपत थी कि कश्मीर, लाहौर, दिल्ली और सरहिन्द की समस्त मुग़ल शक्ति सात महीने आनन्दपुर का घेरा डालने के बावजूद भी न तो गुरू गोबिन्द सिंघ जी को पकड़ सकी और न ही सिक्खों से अपनी अधीनता स्वीकार करवा सकी। सरकारी खजाने के लाखों रूपय व्यय हो गये। हज़ारों की संख्या में फौजी मारे गए पर मुग़ल अपने लक्ष्य में सफलता प्राप्त न कर सके।

चमकौर की रणभूमि से माछीवाड़ा क्षेत्र में

श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी तथा उनके दो अन्य सेवकों ने शत्रु सेना को झांसा देकर माछीवाड़ा क्षेत्र की ओर रूख किया। रात अंधेरी, लम्बी तथा वर्षा के कारण अति शीतल थी। राह दिखाई नहीं देता था। हर दिशा में कांटेदार झाड़ियाँ थी। अत: गुरू साहिब जी का जूता कीचड़ में कहीं खो गया। किन्तु आप किसी अदम्य साहस के साथ आगे बढ़े जा रहे थे। कभी कभी आकाश में बिजली चमकने मात्र से आप का मार्गदर्शन हो रहा था। उबड़-खाबड़ क्षेत्रों को पार करते समय दोनों सेवक भी बिछुड़ गये। किन्तु आप रातभर चलते ही गये, जब तक आपको माछीवाड़ा गाँव दिखाई न दिया। अब आप शत्रु सेना से दूर गाँव के बाहर एक बगीचे में थे। यह बाग गुलाबे मसंद (मिशनरी) का था। इस बाग में एक रहट वाला कुआं था, जिसे अमृत बेला में बगीचे का माली चला रहा था। आपने कुएं पर हाथ मुँह धोए, तभी उस माली ने आपको पहचान लिया। माली ने आपको इस कुएं के निकट बने हुए छप्पड़ में विश्राम करने का आग्रह किया। आपने रहट की पुरानी टिंड को अपना सिरहाना बनाया और उस माली की चटाई पर लेट गये। माली अपने स्वामी गुलाबे मसंद को सूचित करने चला गया कि आपके बगीचे में गुरू गोबिन्द सिंह पधारे हैं। इतने में बिछड़े हुए सिंह आपकी खोज करते हुए वहाँ पहुँच गये। उन्होंने मिलकर अभिनंदन करने के लिए जयकार की - वाहे गुरू जी का खालसा, वाहे गुरू जी की फतेह। गुरू साहिब जी सतर्क हुए। उन्होंने भी उत्तर में जयकारा बुलंद किया। गुलाबा मसंद सूचना पाते ही आपकी अगुवाई करने उपस्थित हुआ वह सभी को अपने घर ले गया और गुरू साहिब जी का भव्य स्वागत किया किन्तु मुग़ल प्रशासन से भयभीत भी हो रहा था कि शत्रुओं को भनक न मिल जाये।

इस गाँव में गुरू साहिब जी के दो मुसलमान सेवक गनीखान तथा नबीखान रहते थे। ये लोग घोड़ों का व्यापार करते थे। उन्होंने गुरू साहिब जी को कई बार घोड़े बेचे थे और प्राय: गुरू साहिब जी से मिलते रहते थे इसलिए उनके व्यक्तित्त्व से बहुत प्रभावित थे अत: उन पर श्रद्धा भक्ति रखने लगे थे। जब मुग़ल सैन्यबल ने गाँव गांव की तलाशी अभियान चलाया तो गुलाबे मसंद को चिन्ता हुई। गुरू साहिब जी भी उसे किसी कठिनाई में नहीं डालना चाहते थे, इसलिए उन्होंने गनीखान और नबीखान को बुला भेजा। इन दोनों भाइयों ने गुरू साहिब जी को संकट की घड़ी में हर

प्रकार की सहायता देने का आश्वासन दिया और अपनी सेवाएं अर्पित की। सभी ने मिलकर एक योजना बनाई और युक्ति से गुरू साहिब जी को किसी सुरक्षित स्थान पर ले चलने के कार्य में जुट गये।

उन दिनों उच्च के पीर मुसलमानों में बहुत प्रसिद्धि प्राप्त थे। यह मुसलमान सूफी फकीर लम्बी दाढ़ी तथा केश रखते थे परन्तु केशों का जूड़ा नहीं करते थे अपितु उन्हें खुला, जटाएं रूप में रखकर ऊपर पगड़ी बाँधते थे और नीले वस्त्र धारण करते थे। प्राय: अपने मुरीदों से मिलने अथवा लोगों से भेंट इत्यादि लेने, गाँवों अथवा देहातों में भ्रमण के लिए निकला करते थे। इन पीरों को श्रद्धावश उनके श्रद्धालु पलंग पर बिठाकर पलंग स्वयं एक गाँव से दूसरे गाँव में अन्य मुरीदों (शिष्यों) के पास पहुँचा देते थे। उच्च नाम का नगर सिन्ध प्रान्त (पाकिस्तान) जिला बहावलपुर में है।

गुरू साहिब जी को उच्च के पीर की तरह वेश-भूषा धारण करवा दी गई और उन्हें उसी प्रकार पलंग पर बिठाकर माछीवाड़े से दूर किसी सुरक्षित स्थान के लिए चल पड़े। गुरू साहिब जी के पलंग के आगे से गनीखान तथा नबीखान ने उठाया तथा पीछे से भाई दया सिंह तथा मानसिंघ जी ने उठा लिया और एक अन्य सेवक को हाथ में मोर पंख का चंवर थमा दिया, जो वह गुरू साहिब जी के ऊपर झूलाने लगा। स्थानीय लोग गनीखान, नबीखान के कथन पर पूर्ण भरोसा कर रहे थे क्योंकि वे यहाँ के गणमान्य व्यक्ति थे। अत: लोग गुरू साहिब जी को उच्च का पीर जानकर बहुत अदब से सजदा करते थे।

माछीवाड़े से लगभग 20 कोस दूर एक फौजी चौकी पर शाही सेना ने गुरू साहिब जी को संदेह में रोक लिया और गुरू साहिब जी से अधिकारियों ने बातचीत की जिसका उत्तर गुरू साहिब जी ने फारसी भाषा में दिया किन्तु अधिकारी दुविधा में थे। एक तरफ उच्च का पीर दूसरी तरफ 'गुरू जी का बचकर निकल जाना, उसकी नौकरी को संकट में डाल सकता था। अत: वह आश्वस्त होना चाहता था। उसने प्रस्ताव रखा कि आप हमारे यहाँ भोजन करें। उत्तर में गुरू साहिब जी ने कहा - मैंने चिल्ला लिया हुआ है अर्थात मैंने उपवास धारण किया हुआ है परन्तु मेरे मुरीद (शिष्य) ये आपके साथ भोजन करेंगे। ऐसा ही किया गया जब भोजन करने लगे तो भाई दया सिंह जी ने गुरू आज्ञा अनुसार अपनी लघु कृपाण भोजन (पुलाव) में डालकर गुरू मन्त्र उच्चारण किया, 'तौह प्रसादि, भ्रम का नाश' और सहर्ष भोजन कर लिया। चलते समय थाली में से कुछ अंश रूमाल में बाँध लिया। इस बीच सैनिक अधिकारी ने निकट के गाँव सलोहपुर से काजी पीर मुहम्मद को गुरू साहिब जी की पहचान करने के लिए बुला लिया। यह काजी साहब, गुरू साहिब जी को बचपन से फारसी भाषा का अध्ययन करवाते थे। जब काजी साहब ने गुरू साहिब जी को पहचाना तो उसने दोहरे अर्थो वाली भाषा में कहा - हाँ मैं इन्हें जानता हूँ यह मेरे भी पीर हैं। इन्हें जाने दो। इस प्रकार गुरू साहिब जी विकट परिस्थिति से सहज ही निकल गये।

यह वीर गाथा उन सुकुमारों की है ; जिन की शहादत के समय अभी दूध के दाँत भी नहीं गिरे थे।

अल्प आयु के शहीद

रात अंधेरी और सरसा नदी की बाढ़ के कारण श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी का परिवार काफिले से बिछुड़ गया। माता गुजर कौर (गुजरी जी), के साथ उनके दो छोटे पोते थे, अपने रसोइये गंगा राम (गंगु) ब्राह्मण के साथ आगे बढ़ती हुई रास्ता भटक गई। उन्हें गँगा राम ने सुझाव दिया कि यदि आप मेरे साथ मेरे गांव सहेड़ी चलें तो यह संकट का समय सहज ही व्यतीत हो जाएगा। माता जी ने स्वीकृति दे दी और सहेड़ी गांव गँगा राम रसोइये के घर पहुँच गये। माता गुजरी जी के पास एक थैली थी, जिसमें कुछ स्वर्ण मुद्राएं थीं जिन पर गंगा राम की दृष्टि पड़ गई। गंगू की नीयत खराब हो गई। उसने रात में सोते हुए माता गुजरी जी के तकिये के नीचे से स्वर्ण मुद्राओं की थैली चुपके से चुरा ली और छत पर चढ़ कर चोर चोर का शोर मचाने लगा। माता जी ने उसे शांत करने का प्रयास किया किन्तु गंगू तो चोर-चतुर का नाटक कर रहा था। इस पर माता जी ने कहा गंगू थैली खो गई है तो कोई बात नहीं, बस केवल तुम शांत बने रहो। किन्तु गंगू के मन में धैर्य कहां? उन्हीं दिनों सरहिन्द के नवाब वजीद ख़ान ने गाँव-गाँव में ढिंढोरा पिटवा दिया कि गुरू साहिब व उनके परिवार को कोई पनाह न दे। पनाह देने वालों को सख्त सजा दी जायेगी और उन्हें पकड़वाने वालों को इनाम दिया जाएगा।

गँगा राम पहले तो यह ऐलान सुनकर भयभीत हो गया कि मैं खामख्वाह मुसीबत में फँस जाऊगा। फिर उसने सोचा कि यदि माता जी व साहिबज़ादों को पकड़वा दूं तो एक तो सूबे के कोप से बच जाऊँगा तथा दूसरा इनाम भी प्राप्त करूंगा।

गंगू नमक हराम निकला। उसने मोरिंडा की कोतवाली में कोतवाल को सूचना देकर इनाम के लालच में बच्चों को पकड़वा दिया।

थानेदार ने एक बैलगाड़ी में माता जी तथा बच्चों को सरहिन्द के नवाब वज़ीद ख़ान के पास कड़े पहरे में भिजवा दिया। वहां उन्हें सर्द ऋतु की रात में ठण्डे बुरज में बन्द कर दिया गया और उनके लिए भोजन की व्यवस्था तक नहीं की गई। दूसरी सुबह एक दोधी (मोती महरा) ने माता जी तथा बच्चों को दूध पिलाया।

नवाब वज़ीदखान जो गुरू गोबिन्द सिंघ जी को जीवित पकड़ने के लिए सात माह तक सेना सहित आनन्दपुर के आसपास भटकता रहा, परन्तु निराश होकर वापस लौट आया था, उसने जब गुरू साहिब के मासूम बच्चों तथा वृद्ध माता को अपने कैदियों के रूप में देखा तो बहुत प्रसन्न हुआ। उसने अगली सुबह बच्चों को कचहरी में पेश करने के लिए फरमान जारी कर दिया।

दिसम्बर की बर्फ जैसी ठण्डी रात को, ठण्डे बुरज में बैठी माता गुजरी जी अपने नन्हें नन्हें दोनों पोतों को शरीर के साथ लगाकर गर्माती और चूम-चूम कर सुलाने का प्रयत्न करती रहीं।

माता जी ने भोर होते ही मासूमों को जगाया तथा स्नेह से तैयार किया। दादी-पोतों से कहने लगी 'पता हैं! तुम उस गोबिन्द सिंघ 'शेर' गुरू के बच्चे हो, जिसने अत्याचारियों से कभी हार नहीं मानी। धर्म की आन तथा शान के बदले जिसने अपना सर्वत्र दांव पर लगा दिया और इससे पहले अपने पिता को भी शहीदी देने के लिए प्रेरित किया था। देखना कहीं वज़ीद ख़ान द्वारा दिये गये लालच अथवा भय के कारण धर्म में कमजोरी न दिखा देना। अपने पिता व धर्म की शान को जान न्यौछावर करके भी कायम रखना।

दादी, पोतों को यह सब कुछ समझा ही रही थी कि वज़ीद ख़ान के सिपाही दोनों साहिबजादों को कचहरी में ले जाने के लिए आ गये। जाते हुए दादी माँ ने फिर सहिबजादों को चूमा और पीठ पर हाथ फेरते हुए उन्हें सिपाहियों के संग भेज दिया।

कचहरी का बड़ा दरवाजा बंद था। साहिबज़ादों को खिड़की से अन्दर प्रवेश करने को कहा गया। रास्ते में उन्हें बार बार कहा गया था कि कचहरी में घुसते ही नवाब के समक्ष शीश झुकाना है। जो सिपाही साथ जा रहे थे वे पहले सर झुका कर खिड़की के द्वारा अन्दर दाखिल हुए। उनके पीछे साहबज़ादे थे। उन्होंने खिड़की में पहले पैर आगे किये और फिर सिर निकाला। थानेदार ने बच्चों को समझाया कि वे नवाब के दरबार में झुककर सलाम करें, किन्तु बच्चों ने इसके विपरीत उत्तर दिया और कहा - यह सिर हमने अपने पिता गुरू गोबिन्द सिंघ के हवाले किया हुआ है, इसलिए इस को कहीं और झुकाने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता।

कचहरी में नवाब वज़ीदखान के साथ और भी बड़े बड़े दरबारी बैठे हुए थे। दरबार में प्रवेश करते ही जोरावर सिंघ तथा फतेह सिंघ दोनों भाईयों ने गर्ज कर जयकारा लगाया - 'वाहिगुरू जी का खालसा, वाहिगुरू जी की फतेह'। नवाब तथा दरबारी, बच्चों का साहस देखकर आश्चर्य में पड़ गये। एक दरबारी सुच्चा नंद ने बच्चों से कहा - ऐ बच्चों ! नवाब साहब को झुककर सलाम करो। साहिबज़ादों ने उत्तर दिया, 'हम गुरू तथा ईश्वर के अतिरिक्त किसी को भी शीश नहीं झुकाते, यही शिक्षा हमें प्राप्त हुई है'।

नवाब वज़ीदखान कहने लगा, - 'ओए तुम्हारा पिता तथा तुम्हारे दोनों बड़े भाई युद्ध में मार दिये गये हैं। तुम्हारी तो किस्मत अच्छी है जो मेरे दरबार में जीवित पहुँच गये हो। इस्लाम धर्म को कबूल कर लो तो तुम्हें रहने को महल, खाने को भांति भांति के पकवान तथा पहनने को रेशमी वस्त्र मिलेंगे। तुम्हारी सेवा में हर समय सेवक रहेंगे। बड़े हो जाओगे तो बड़े-बड़े मुसलमान जरनैलों की सुन्दर बेटियों से तुम्हारी शादी कर दी जायेगी। तुम्हें सिक्खी से क्या लेना है ?सिक्ख धर्म को हमने जड़ से उखाड़ देना है। हम सिक्ख नाम की किसी वस्तु को रहने ही नहीं देंगे। यदि मुसलमान बनना स्वीकार नहीं करोगे तो कष्ट दे देकर मार दिये जाओगे और तुम्हारे शरीर के टुकड़े सड़कों पर लटका दिये जायंगे ताकि भविष्य में कोई सिक्ख बनने का साहस ना कर सके।'' नवाब बोलता गया। पहले तो बच्चे उसकी मूर्खता पर मुस्कराते रहे, फिर नवाब द्वारा डराने पर उनके चेहरे लाल हो गये।

इस बार जोरावर सिंघ दहाड़ उठा – हमारे पिता अमर हैं। उसे मारने वाला कोई जन्मा ही नहीं। उस पर अकाल पुरूष (प्रभु) का हाथ है। उस वीर योद्धा को मारना असम्भव है। दूसरी बात रही, इस्लाम कबूल करने की , तो हमें सिक्खी जान से अधिक प्यारी है। दुनियां का कोई भी लालच व भय हमें सिक्खी से नहीं गिरा सकता। हम पिता गुरू गोबिन्द सिंघ के शेर बच्चे हैं तथा शेरों की भान्ति किसी से नहीं डरते। हम इस्लाम धर्म कभी भी स्वीकार नहीं करेंगे। तुमने जो करना हो, कर लेना। हमारे दादा श्री गुरू तेग बहादुर साहिब ने शहीद होना तो स्वीकार कर लिया परन्तु धर्म से विचलित नहीं हुए। हम उसी दादा जी के पोते हैं, हम जीते जी उनकी शान को आंच नहीं आने देंगे।

सात वर्ष के जोरावर सिंघ तथा पाँच वर्ष के फतेह सिंघ के मुँह से बहादुरों वाले ये शब्द सुनकर सारे दरबार में चुप्पी छा गई। नवाब वज़ीद ख़ान भी बच्चों की बहादुरी से प्रभावित हुए बिना न रह सका। परन्तु उसने काज़ी को साहिबज़ादों के बारे में फतवा (सजा) देने को कहा – काज़ी ने उत्तर दिया कि बच्चों के बारे में फतवा (दण्ड) नहीं सुनाया जा सकता। इस पर सुच्चानन्द बोला, – इतनी अल्प आयु में ये राज दरबार में इतनी आग उगल सकते हैं तो बड़े होकर तो हकूमत को ही आग लगा देंगे। ये बच्चे नहीं, साँप हैं, सिर से पैर तक ज़हर से भरे हुए। एक गुरू गोबिन्द सिंघ ही बस में नहीं आते तो जब ये बड़े हो गये तो उससे भी दो कदम आगे बढ़ जायेंगे। साँप को पैदा होते ही मार देना चाहिए। देखो, इनका हौसला ! नवाब का अपमान करने से नहीं झिझके। इनका तो अभी से काम तमाम कर देना चाहिए। नवाब ने बाकी दरबारियों की ओर प्रश्नवाचक दृष्टि से देखा कि कोई और सुच्चानन्द की बात का समर्थन करता है अथवा नहीं, परन्तु सभी दरबारी मूर्तिव्रत खड़े रहे। किसी ने भी सुच्चा नन्द की हाँ में हाँ नहीं मिलाई।

तब वज़ीद ख़ान ने मालेरकोटले के नवाब से पूछा, – ''आपका क्या ख्याल है ?आपका भाई और भतीजा भी तो गुरू के हाथों चमकौर में मारे गये हैं। लो अब शुभ अवसर आ गया है बदला लेने का, इन बच्चों को मैं आपके हवाले करता हूँ। इन्हें मृत्यु दण्ड देकर आप अपने भाई – भतीजे का बदला ले सकते है।''

मालेरकोटले का नवाब पठान पुत्र था। उस शेर दिल पठान ने मासूम बच्चों से बदला लेने से साफ इन्कार कर दिया और उसने कहा, – ''इन बच्चों का क्या कसूर है ?यदि बदला लेना ही है तो इनके बाप से लेना चाहिए। मेरा भाई और भतीजा गुरू गोबिन्द सिंघ के साथ युद्ध करते हुए रणक्षेत्र में शहीद हुए हैं, कत्ल नहीं किये गये हैं। इन बच्चों को मारना मैं बुज़दिली समझता हूँ। अतः इन बेकसूर बच्चों को छोड़ दीजिए। मालेरकोटले का नवाब शेरमुहम्मद ख़ान चमकौर के युद्ध से वज़ीद ख़ान के साथ ही वापिस आया था और वह अभी सरहिन्द में ही था।

नवाब पर सुच्चा नन्द द्वारा बच्चों के लिए दी गई सलाह का प्रभाव तो पड़ा, पर वह बच्चों को मारने की बजाय इस्लाम में शामिल करने के हक में था। वह चाहता था कि इतिहास के पन्नों पर लिखा जाय कि गुरू गाबिन्द सिंघ के बच्चों ने सिख धर्म से इस्लाम को अच्छा समझा और मुसलमान बन गए। अपनी इस इच्छा की पूर्ति हेतु उसने गुस्से पर नियंत्रण कर लिया तथा कहने लगा, "बच्चों जाओ, अपनी दादी के पास। कल आकर मेरी बातों का सही – सही सोचकर उत्तर देना। दादी से भी सलाह कर लेना। हो सकता है तुम्हें प्यार करने वाली दादी तुम्हारी जान की रक्षा के लिए तुम्हारा इस्लाम में आना कबूल कर ले।"

बच्चे कुछ कहना चाहते थे परन्तु वज़ीद ख़ान शीघ्र ही उठकर एक तरफ हो गया और सिपाही बच्चों को दादी मां की ओर लेकर चल दिए।

बच्चों को पूर्ण सिक्खी स्वरूप में तथा चेहरों पर पूर्व की भांति जलाल देखकर दादी ने सुख की सांस ली। अकाल पुरख का दिल से धन्यवाद किया और बच्चों को बाहों में समेट लिया। काफी देर तक बच्चे दादी के अलिंग्न में प्यार का आनन्द लेते रहे। दादी ने आंखें खोलीं कलाई ढीली की, तब तक सिपाही जा चुके थे।

अब माता गुजरी जी आहिस्ता-आहिस्ता पोतों से कचहरी में हुए वार्तालाप के बारे में पूछने लगी। बच्चें भी दादी मां को कचहरी में हुए वार्तालाप के बारे में बताने लगे। उन्होंने सुच्चा नन्द की ओर से जलती पर तेल डालने के बारे भी दादी मां को बताया।

दादी मां ने कहा, ''शाबाश बच्चों! तुमने अपने पिता तथा दादा की शान को कायम रखा है। कल फिर तुम्हें कचहरी में और अधिक लालच तथा डरावे दिये जाएंगे। देखना, आज की भाँति धर्म को जान से भी अधिक प्यारा समझना और ऐसे ही दृढ़ रहना। अगर कष्ट दिए जाएँ तो अकाल पुरख का ध्यान करते हुए श्री गुरू तेग बहादुर साहिब और श्री गुरू अर्जुन देव साहिब की शहादत को सामने लाने का प्रयास करना। भाई मतिदास और भाई दयाला ने भी गुरू चरणों का ध्यान करते हुए मुस्कराते-मुस्कराते तन चिरवा लिया और पानी में उबलवा लिया था। तुम्हारे विदा होने पर मैं भी तुम्हारे सिक्खी-सिदक की परिपक्ता के लिए गुरू चरणों में और अकाल पुरख के समक्ष सिमरन में जुड़ कर अरदास करती रहुँगी हूँ। यह कहते-कहते दादी माँ बच्चों को अपनी अलिंगन (गोद, बगल) में लेकर सो गई।

अगले दिन भी कचहरी में पहले जैसे ही सब कुछ हुआ, और भी ज्यादा लालच दिये गये तथा धमकाया गया। बच्चे धर्म से नहीं डोले। नवाब ने लालच देकर बच्चों को धर्म से फुसलाने का प्रयत्न किया। उसने कहा कि यदि वे इस्लाम स्वीकार कर लें तो उन्हें जागीरें दी जाएंगी। बड़े होकर शाही खानदान की शहज़ादियों के साथ विवाह कर दिया जाएगा। शाही खजाने के मुँह उनके लिए खोल दिए जाएंगे।

नवाब का ख्याल था कि भोली-भाली सूरत वाले ये बच्चे लालच में आ जाएंगे। पर वे तो गुरू गोबिन्द सिंघ के बच्चे थे, मामूली इन्सान के नहीं। उन्होंने किसी शर्त अथवा लालच में आकर इस्लाम स्वीकार करने से एकदम इन्कार कर दिया।

अब नवाब धमकियों पर उतर आया। गुस्से से लाल पीला होकर कहने लगा - 'यदि इस्लाम कबूल न किया तो मौत के घाट उतार दिए जाओगे। फाँसी चढ़ा दूँगा। जिन्दा दीवार में चिनवा दूँगा। बोलो, क्या मंजूर है - मौत या इस्लाम?

ज़ोरावर सिंघ ने हल्की सी मुस्कराहट होठों पर लाते हुए अपने भाई से कहा, 'भाई, हमारे शहीद होने का अवसर आ गया है। ठीक उसी तरह जैसे हमारे दादा गुरू तेगबहादुर ने दिल्ली के चाँदनी चौक में शीश देकर शहीदी पाई थी। तुम्हारा क्या ख्याल है?

फतेह सिंघ ने उत्तर दिया, 'भाई जी, हमारे दादा जी ने शीश दिया पर धर्म न हीं छोड़ा। उनका उदाहरण हमारे सामने है। हमने खण्डे का अमृत पान किया हुआ है। हमें मृत्यु से क्या भय?मेरा तो विचार है कि हम भी अपना शीश धर्म के लिए देकर मुगलों पर प्रभु के कहर की लानत डालें।

ज़ोरावर सिंघ ने कहा,- ''हम गुरू गोबिन्द सिंघ जैसी महान् हस्ती के पुत्र हैं। जैसे हमारे दादा गुरू तेगबहादुर शहीद हो चुके हैं। वैसे ही हम अपने खानदान की परम्परा को बनाए रखेंगे। हमारे खानदान की रीति है, 'सिर जावे तो जावे, पर सिक्खी सिदक न जाये।' हम धर्म परिवर्तन की बात ठुकरा कर फाँसी के तख्ते को चूमेंगे।'

जोश में आकर फतेह सिंघ ने कहा - 'सुन रे सूबेदार ! हम तेरे दीन को ठुकराते हैं। अपना धर्म नहीं छोड़ेंगे। अरे मूर्ख, तू हमें दुनिया का लालच क्या देता है?हम तेरे झांसे में आने वाले नहीं। हमारे दादा जी को मार कर मुगलों ने एक अग्नि प्रज्वलित कर दी है, जिसमें वे स्वयँ भस्म होकर रहेंगे। हमारी मृत्यु इस अग्नि को हवा देकर ज्वाला बना देगी।

सुच्चा नन्द ने नवाब को परामर्श दिया कि बच्चों की परीक्षा ली जानी चाहिए। अत: उनको अनेकों भान्ति भान्ति के खिलौने दिये गये। बच्चों ने उन खिलौनों में से धनुष बाण, तलवार इत्यादि अस्त्र-शस्त्र रूप वाले खिलौने चुन लिए। जब उन से पूछा गया कि इससे आप क्या करोगे तो उनका उत्तर था युद्ध अभ्यास करेंगे। वजीद ख़ान ने चढ़दी कला के विचार सुनकर; काज़ी के मन में यह बात बैठ गई कि सुच्चा नन्द ठीक ही कहता है कि साँप के बच्चे साँप ही होते हैं। वजीद ख़ान ने काज़ी से परामर्श करने के पश्चात् उसको दोबारा फतवा देने को कहा - इस बार काज़ी ने कहा कि बच्चे कसूरवार हैं क्योंकि बगावत पर तुले हुए हैं। इनको किले की दीवारों में चिन कर कत्ल कर देना चाहिए।

कचहरी में बैठे मालेरकोटले के नवाब शेर मुहम्मद ने कहा, "नवाब साहब इन बच्चों ने कोई कसूर नहीं किया इनके पिता के कसूर की सज़ा इन्हें नहीं मिलनी चाहिए। इस्लाम की शरह अनुसार सज़ा उसी को मिलनी चाहिए जो कसूरवार हो, दूसरों को नहीं।"

काज़ी बोला, "शेर मुहम्मद! इस्लामी शरह को मैं तुमसे बेहतर जानता हूँ। मैंने शरह के अनुसार ही सजा सुना दी है।"

तीसरे दिन बच्चों को कचहरी भेजते समय दादी माँ की आँखों के सामने होने वाले काण्ड की तस्वीर बनती जा रही थी। दादी माँ को निश्चय था कि आज का बिछोड़ा बच्चों से सदा के लिए बिछोड़ा बन जाएगा। परन्तु यकीन था माता गुजरी जी को कि मेरे मासूम पोते आज जीवन कुर्बान करके भी धर्म की रक्षा करेंगे।

मासूम पोतों को जी भर कर प्यार किया, माथा चूमा, पीठ थपथपाई और विदा किया बावर्दी सिपाहियों के साथ, होनी से निपटने के लिये। दादी माँ टिकटिकी लगा कर तब तक सुन्दर बच्चों की ओर देखती रही जब तक वे आँखों से ओझल न हो गये।

माता गुजरी जी पोतों को सिपाहियों के साथ भेज कर वापिस ठंडे बुरज में गुरू चरणें में ध्यान लगा कर वाहिगुरू के दर पर प्रार्थना करने लगी, "हे अकाल पुरख! बच्चों के सिक्खी-सिदक को कायम रखने में सहाई होना। दाता! धीरज और बल देना इन मासूम गुरू पुत्रों को ताकि बच्चे कष्टों का सामना बहादुरी से कर सकें।

तीसरे दिन साहिबज़ादों को कचहरी में लाकर डराया धमकाया गया। उनसे कहा गया कि यदि वे इस्लाम अपना लें तो उनका कसूर माफ किया जा सकता है और उन्हें शहजादों जैसे सुख-सुविधाएं प्राप्त हो सकती हैं। किन्तु साहिबज़ादे अपने निश्चय पर अटल रहे। उन की दृढ़ता थी कि सिक्खी शान केशों श्वासों के संग निभानी हैं। उनकी दृढ़ता को देख कर उन्हें किले की दीवार की नींव में चिनवाने की तैयारी आरम्भ कर दी गई किन्तु बच्चों को शहीद करने के लिए कोई जल्लाद तैयार न हुआ। अकस्मात् दिल्ली के शाही जल्लाद साशल बेग व बाशल बेग अपने एक मुकद्दमें के सम्बन्ध में सरहिन्द आये। उन्होंने अपने मुकद्दमें में माफी का वायदा लेकर साहिबज़ादों को शहीद करना मान लिया। बच्चों को उनके हवाले कर दिया गया। उन्होंने जोरावर सिंघ व फतेह सिंघ को किले की नींव में खड़ा करके उनके आस पास दीवार चिनवानी प्रारम्भ कर दी।

बनते-बनते दीवार जब फतेह सिंघ के सिर के निकट आ गई तो जोरावर सिंघ दु:खी दीखने लगे। काज़ियों ने सोचा शायद वे घबरा गए हैं और अब धर्म परिवर्तन के लिए तैयार हो जायेंगे। उनसे दु:खी होने का कारण पूछा गया तो जोरावर बोले "मृत्यु भय तो मुझे बिल्कुल नहीं। मैं तो सोचकर उदास हूं कि मैं बड़ा हूं, फतेह सिंघ छोटा हैं। दुनिया में मैं पहले आया था। इसलिए यहां से जाने का भी पहला अधिकार मेरा है। फतेह सिंघ को धर्म पर बलिदान हो जाने का सुअवसर मुझ से पहले मिल रहा है।

छोटे भाई फतेह सिंघ ने गुरूवाणी की पंक्ति कहकर दो वर्ष बड़े भाई को सांत्वना दी।

चिंता ताकि कीजिए, जो अनहोनी होइ।

इह मारगि सँसार में, नानक थिर नहि कोइ।

और धर्म पर दृढ़ बने रहने का संकल्प दोहराया -

बच्चों ने अपना ध्यान गुरू चरणों में जोड़ा और गुरूबाणी का पाठ करने लगे। पास में खड़े काज़ी ने कहा- "अभी भी मुसलमान बन जाओ, छोड़ दिये जाओगे। बच्चों ने काज़ी की बात की ओर कोई ध्यान नहीं दिया अपितु उन्होंने अपना मन प्रभु से जोड़े रखा। दीवार फतेह सिंघ के गले तक पहुंच गई काज़ी के संकेत से एक जल्लाद ने फतेह सिंघ तथा उस के बड़े भाई जोरावर सिंघ का शीश तलवार के एक वार से कलम कर दिया। इस प्रकार श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी के सुपुत्रों ने अल्प आयु मे ही शहादत प्राप्त की।

माता गुजरी जी बच्चे के लौटने की प्रतीक्षा में गुम्बद की मीनार पर खड़ी होकर राह निहार रही थी कि उन को

पीछे से किसी दुष्ट ने धक्का दे दिया जिस से वह लड़खड़ा कर नीचे गिर पड़ी और उन का निधन हो गया।

स्थानीय निवासी जौहरी टोडरमल को जब गुरू साहिब के बच्चों को यातनाएँ देकर कत्ल करने के हुक्म के विषय में ज्ञात हुआ तो वह अपना समस्त धन लेकर बच्चों को छुड़वाने के विचार से कचहरी पहुँचा किन्तु उस समय बच्चों को शहीद किया जा चुका था। उसने नवाब से अंत्येष्टि क्रिया के लिए बच्चों के शव माँगे। वज़ीद ख़ान ने कहा - यदि तुम इस कार्य के लिए भूमि, स्वर्ण मुद्राएं बिछा कर खरीद सकते हो तो तुम्हें शव दिये जा सकते हैं। टोडरमल ने अपना समस्त धन भूमि पर बिछाकर एक चारपाई जितनी भूमि खरीद ली और तीनों शवों की एक साथ अंत्येष्टि कर दी।

यह सारा किस्सा गुरू के सिक्खों ने गुरू गोबिन्द सिंघ को नूरी माही द्वारा सुनाया गया तो उस समय अपने हाथ में पकड़े हुए तीर की नोंक के साथ एक छोटे से पौधे को जड़ से उखाड़ते हुए उन्होंने कहा - जैसे मैंने यह पौधा जड़ से उखाड़ा है, ऐसे ही तुरकों की जड़ें भी उखाड़ी जाएंगी।

फिर गुरू साहिब ने सिक्खों से पूछा - 'मलेर-कोटले के नवाब के अतिरिक्त किसी और ने मेरे बच्चों के पक्ष में आवाज़ उठाई थी ?सिक्खों ने सिर हिलाकर नकारात्मक उत्तर दिया।

इस पर गुरू साहिब ने फिर कहा - 'तुरकों की जड़ें उखड़ने के बाद भी मलेर-कोटले के नवाब की जड़ें कायम रहेंगी, पर मेरे सिक्ख एक दिन सरहिन्द की ईट से ईट बजा देंगे'। यह घटना 13 पौष तदानुसार 26 दिसम्बर 1704 ईस्वी में घटित हुई।

नोट : मलेरकोटले की जड़ें आज तक कायम हैं। बन्दा बहादुर ने 1710 में सचमुच सरहिन्द शहर की ईंट से ईंट बजा दी थी।

जिस कुल जाति कौम के बच्चे यूं करते हैं बलिदान।

उस का वर्तमान कुछ भी हो परन्तु भविष्य है महान।

मैथिली शरण गुप्त

यह गर्दन कट तो सकती है मगर झुक नहीं सकती।

कभी चमकौर बोलेगा कभी सरहिन्द की दीवार बोलेगी।।

सरदार पंछी

हम अपनी जान दे के औरों की जानें बचा चले।

सिंघों की सल्तनत का पौधा लगा चले।।

हकीम अल्ला यार खाँ जोगी

समाप्त

निम्नलिखित वेबसाइट में दस गुरूजनों का सम्पूर्ण जीवन वृत्तांत विस्तृत रूप में अवश्य देखें तथा पढ़ें।

www.sikhworld.info
or
www.sikhhistory.in

E-mail : info@sikhworld.info
&
jasbirsikhworldinfo@gmail.com

ਉਪਰੋਕਤ ਵੇਬ ਸਾਇਟ ਵਿੱਚ ਦਸ ਗੁਰੂਸਾਹਿਬਾਂਨ ਦਾ ਸੰਪੂਰਨ ਜੀਵਨ ਬਿਊਰਾ ਵਿਸਤਾਰ ਸਹਿਤ ਜ਼ੁਰੂਰ ਦੇਖੋ ਅਤੇ ਪੜੋ ਜੀ।

इस वैब साईट की विशेषता

इस में है एक विशाल सिक्ख संग्रहालय (Museum)

श्री गुरु नानक देव जी के जीवन वृंत्तातों से सम्बन्धित घटना क्रमों के चित्रों से लेकर श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी के जीवन काल तक काल्पनिक तस्वीरों जो इतिहास के द्रसाती हैं तथा उनके नीचे हैं हिन्दी और पंजाबी में टिप्पड़ियां (फुटनोट) जो घटनाक्रम अथवा इतिहासिक प्रसंगों का वर्णन करती हैं।

नोटः – यह कार्य बच्चों की रुची को मद्देनज़र रख कर किया गया है ताकि वे सहज में अपना इतिहास जान सके। मुझे आशा है सिक्ख जगद् के किशौर अथवा युवक इस विधि से लभान्वित होंगे क्यों कि इस प्रणाली में आधी बात तस्वीरे कहती हैं तथा आधी बात निम्नलिखित फुटनोट कहते हैं। इस प्रकार पाठकों के मन में अपने इतिहास को जानने के प्रति रुची जागृत हो जाती है। अब आप इस के आगे सत्तारवीं + अठारहवीं + उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दी के शहीदों के चित्र फुटनोट सहित देखेंगे। इस के साथ ही सिक्ख महापुरुषों अथवा महान व्यक्ति के लोग को भी देखेंगे। और टिप्पड़ियों द्वारा जाने जाएगे। कृप्या आप सिक्ख मयुजियम पर अवश्य ही किलिक किजिए।

नोट :–

1. इस वृतांत को आगे पढ़ने के लिए कृपया जीवन वृतांत गुरू अंगद देव जी पढ़े।
2. यदि कोई इसे पुनः प्रकाशित करवाना चाहे तो वह निःशुल्क बटवा सकता है।